# भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

# भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

**Ph.D., D.Lit. (Sub.)**

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

**छवि पब्लिकेशन्स**

अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2024

*ISBN* : 978 - 81 - 89435 - 66 - 0

मूल्य - 300/-

रचना - भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

# साहित्य एवं ललित कलाओं के संदर्भ में संस्कृति दर्शन

**उमेश कुमार**
**सहायक आचार्य ( शिक्षा विभाग )**
**हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर**

कला संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है, जो मानव जीवन को सुंदर और व्यवस्थित बनाती है। संस्कृति किसी देश की वैज्ञानिक, कलात्मक और आध्यात्मिक उपलब्धियों का प्रतीक होती है तथा उसके मानसिक विकास का द्योतक होती है। उदय शंकर तिवारी के अनुसार, किसी देश का सम्मान उसकी संस्कृति पर आधारित होता है। संस्कृति निरंतर बदलती परिस्थितियों के अनुरूप विकसित होती है और यह देश की आत्मा तथा सामाजिक संगठन का परिचायक है।

भारतीय संस्कृति का इतिहास अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है, जिसका विकास सहस्त्राब्दियों से होता आ रहा है। भारतीय कलाओं में धार्मिक और दार्शनिक विचारों की सरल एवं प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मिलती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ भारतीय संस्कृति की आधारशिला हैं।

कला, मानव की भावनाओं और अवधारणाओं को नया आयाम प्रदान करती है और संस्कृति दर्शन का अविभाज्य अंग बन जाती है। साहित्य में कला की बहुमुखी आत्म-अभिव्यक्ति और सूक्ष्म भावनात्मक स्वरूप का विशेष स्थान है। यही कारण है कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, जिसमें किसी देश, युग और संस्कृति की आत्मा का प्रतिबिंब देखा जा सकता है।

साहित्य शब्द का प्रथम प्रयोग आचार्य कुण्टक ने किया। उन्होंने इसे शब्द और अर्थ के ऐसे विशिष्ट साहचर्य के रूप में परिभाषित किया जिसमें वक्रता के कारण अलंकारों और गुणों की शोभा एक-दूसरे से स्पर्धा करती हुई उभरती है। वस्तुत: शब्द और अर्थ केवल भाषा की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि वे समाज की सीमाओं और मान्यताओं के प्रतीक भी हैं। साहित्य इन्हीं शब्दों और अर्थों का ऐसा संगम है जो मनुष्य के सामाजिक स्वरूप की व्याख्या करता है।

मनुष्य अपनी इन्द्रियों से ज्ञान अर्जित करता है और स्मरणशक्ति के सहारे

उसका संरक्षण करता है। इन्हीं अनुभवों और स्मरणों की बुनावट से साहित्य का सृजन होता है। साहित्यकार की सृजनात्मक कल्पना केवल भावनाओं को ही नहीं, बल्कि विज्ञान और दर्शन को भी दृष्टि प्रदान करती है। यही कारण है कि साहित्य किसी युग और समाज का दर्पण कहा जाता है।

भारतीय साहित्य की जड़ें संस्कृत भाषा में हैं। संस्कृत अपनी मौलिकता, ओजस्विता, सौन्दर्य, वाक्शक्ति और व्यापक भावभूमि के कारण विश्व साहित्य की अग्रणी भाषाओं में गिनी जाती है। इसमें विचारों की उच्चता और अभिव्यक्ति की सशक्तता इतनी प्रखर है कि यह सदैव कालजयी बनी रही। संस्कृत के अतिरिक्त पाली, प्राकृत और आगे चलकर बंगाली, मराठी, द्रविड़, हिंदी और अन्य अनेक क्षेत्रीय भाषाओं में भी साहित्य की धारा प्रवाहित हुई। इन सभी ने आध्यात्मिक मूल्यों और सांस्कृतिक चेतना को अपने साहित्य में स्थान दिया।

भारतीय साहित्य की परंपरा अत्यंत विशाल और विविधतापूर्ण है। वेद और उपनिषदों से लेकर रामायण और महाभारत तक, कालिदास और भवभूति से लेकर भर्तृहरि, जयदेव और तुलसीदास तक, धम्मपद और जातकों से लेकर पंचतंत्र तक, कबीर, नानक, मीरा, तुकाराम, आलवार और शैव संतों तक, यह परंपरा निरंतर समाज और संस्कृति को नई ऊर्जा प्रदान करती रही है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ठीक ही कहा है कि जिस जाति और सभ्यता के पास इतने विशाल साहित्यिक रत्न हों, उसे निश्चय ही संसार की महानतम और सृजनशील सभ्यताओं में गिना जाएगा। वास्तव में भारतीय संस्कृति का सबसे सबल, प्राणवान और अकाट्य पक्ष उसका साहित्य है, जो इसे विश्व में एक विशिष्ट पहचान दिलाता है।

भारतीय साहित्य का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य इसकी गहन चिन्तनशीलता है। इसने केवल भावनात्मक राग-विराग का वर्णन नहीं किया, बल्कि मानव-जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों और तन्मय मनोगतियों का सूक्ष्म अध्ययन कर उन्हें जीवन-दर्शन से जोड़ा। साहित्य ने परंपरा से प्राप्त सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों तथा मान्यताओं का समीक्षात्मक विश्लेषण किया और उन्हें व्यक्ति के बुनियादी स्तरों से जोड़ते हुए परम मूल्य की ओर उन्मुख किया। इस दृष्टि से भारतीय साहित्य केवल सौंदर्य या मनोरंजन की वस्तु न रहकर जीवन के सर्वोच्च आदर्शों का प्रवक्ता बन गया।

भारतीय साहित्य की विशेषता यह है कि उसने व्यक्ति की भावनाओं और आकांक्षाओं के साथ-साथ उन परम मूल्यों को भी महत्त्व दिया है जो मानवता को स्थायी आधार प्रदान करते हैं। साहित्य में तर्क और चिन्तनशीलता केवल बौद्धिक प्रयोग नहीं रहे, बल्कि जीवन की गहरी सच्चाइयों के प्रवक्ता बने। इस प्रकार साहित्य ने व्यक्ति और समाज दोनों को दिशा दी।

श्री अरविन्द के अनुसार, भारतीय साहित्य का सबसे उज्ज्वल युग वह था जब राष्ट्र के गर्भ में एक गहन आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और सूक्ष्म अंतरज्ञानात्मक चेतना कार्य कर रही थी। उस समय गम्भीर एवं विषद् बौद्धिक विचार-श्रृंखलाएँ, उच्च नैतिक आदर्श, साहसिक कार्यधाराएँ और सृजन प्रवृत्तियाँ सक्रिय थीं। इन प्रवृत्तियों ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता की अनूठी योजना खोजी और उसकी स्थायी नींव रखी।

इस महान परंपरा का मूर्त रूप हमें भारत की प्राचीनतम कृतियों में मिलता है—वेद, उपनिषद और दो महाकाव्य रामायण और महाभारत। ये चारों रचनाएँ भारतीय प्रतिभा के चार उच्चतम शिखर हैं। इनमें से प्रत्येक अपनी शैली, कोटि और भावना में इतनी विशिष्ट है कि उसकी समकक्ष रचना विश्व साहित्य में विरल है। यही कारण है कि भारतीय साहित्य विश्व की उन अमूल्य धरोहरों में है, जो मानव सभ्यता के सवोज़्च्च उपलब्धियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। श्री अरविन्द का विचार इस सत्य की पुष्टि करता है कि भारतीय साहित्य, संस्कृति और सभ्यता की आत्मा है, जिसकी तुलना विश्व की अन्य परंपराओं से करना कठिन है।

भारतीय संस्कृति के साहित्य को किसी निश्चित काल-सीमा में बाँधना कठिन है, क्योंकि यह परम्परा निरंतर प्रवाहित होती रही है। श्री अरविन्द के विचारों में जिन स्तम्भों की चर्चा की गई है, वही वस्तुतः भारतीय संस्कृति-दर्शन की आधारशिला हैं। भारतीय साहित्य का प्रारम्भ वैदिक ग्रन्थों से होता है। वेद ने मानवता को आध्यात्मिक अंतर्ज्ञान, धार्मिक अनुभव और जीवन के शाश्वत मूल्यों का वरदान दिया। यही मूल्य आगे चलकर भारतीय संस्कृति के प्रतीक और उसकी आत्मा बने।

जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने भारतीय साहित्य और संस्कृति की गहनता को स्वीकार करते हुए कहा कि संसार के किसी भी गगनमण्डल के नीचे मानव मस्तिष्क ने इतने श्रेष्ठ उपहार प्रदान नहीं किए जितने भारत में। यहाँ जीवन की गम्भीरतम समस्याओं पर गहराई से विचार हुआ और ऐसे समाधान प्रस्तुत हुए, जिन्होंने प्लेटो और कांट जैसे महान दार्शनिकों का भी ध्यान आकर्षित किया। मैक्समूलर के अनुसार, वैदिक साहित्य एक ऐसा अध्याय है जिसे 'मानव जाति की शिक्षा' कहा जा सकता है, और जिसका कोई समानान्तर अध्याय विश्व के अन्य साहित्य में नहीं मिलता।

भारतीय साहित्य की परम्परा में सर्वप्रथम वेदों का स्थान है। चार वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद न केवल भारतीय साहित्य, बल्कि सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन की नींव माने जाते हैं। मनुस्मृति में वेद को धर्म का मूल कहा गया है और यह स्वीकार किया गया है कि समस्त ज्ञान उसमें निहित है। भारतीय मान्यता के अनुसार वेदों में चारों वर्णों, तीनों लोकों, चारों आश्रमों और भूत, वर्तमान तथा भविष्य—सभी का ज्ञान समाहित है।

'वेद' शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है—ज्ञान। इसी धातु से 'विद्या' शब्द भी बना है। इस प्रकार वेद और विद्या का मूल अर्थ समान है। प्राचीन परिभाषाओं में 'वेद' शब्द का प्रयोग मंत्र भाग और ब्राह्मण भाग दोनों के लिए समान रूप से किया जाता है। वेद के मंत्र भाग में स्तुति, प्रार्थना, उपासना और दार्शनिक चिन्तन है, जबकि ब्राह्मण भाग में यज्ञ-विधान, कर्मकाण्ड और जीवन के व्यवहारिक पक्ष का विवेचन है। इस प्रकार वेद केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि सम्पूर्ण ज्ञान और संस्कृति का भंडार हैं।

भारतीय संस्कृति का आधारभूत स्रोत वेद है। स्वामी दयानन्द के मतानुसार चार वेद हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेदों के भाष्यरूप को ब्राह्मण ग्रंथ कहा गया है। ब्राह्मण ग्रंथों के अंतिम भाग आरण्यक कहलाते हैं। आरण्यक मुख्यत: वानप्रस्थ आश्रम के जीवन, उनके कर्मों तथा तपश्चर्या का उल्लेख करते हैं। प्राचीन गणना के अनुसार आरण्यकों की संख्या 1130 बताई जाती है, पर वर्तमान में केवल आठ आरण्यक उपलब्ध हैं। इनमें ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक, माध्यन्दिनीय, छान्दोग्य आदि प्रमुख हैं। आरण्यकों के अंतिम भाग को उपनिषद कहा गया है। उपनिषदों की संख्या बहुत अधिक है, किंतु प्राचीन परंपरा में 11 उपनिषद मुख्य माने जाते हैं- ईश, कठ, प्राण, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर और कौषीतकी।

वेदों के अध्ययन के लिए सहायक ग्रंथों को वेदांग कहा जाता है। ये छह हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष। शिक्षा उच्चारण की शुद्धता सिखाती है, कल्प में संस्कार और आचार-विधान मिलते हैं, व्याकरण भाषा को शुद्ध करता है, निरुक्त शब्दों के अर्थ बताता है, छन्दों में काव्य की लय है और ज्योतिष काल-गणना का विज्ञान है। वेदांगों के अतिरिक्त चार उपवेद भी माने जाते हैं- आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान), धनुर्वेद (युद्ध कौशल), गंधर्ववेद (संगीत और नृत्य), शिल्पवेद (स्थापत्य और कला)।

भारतीय दर्शन साहित्य में छह आस्तिक दर्शन विशेष रूप से प्रतिष्ठित हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा (वेदान्त)। इनके अतिरिक्त बौद्ध दर्शन और चार्वाक दर्शन का भी विस्तृत साहित्य उपलब्ध है। महाकाव्यों में रामायण और महाभारत विशेष महत्त्व रखते हैं। इन ग्रंथों में न केवल ऐतिहासिक और पौराणिक आख्यान हैं, बल्कि जीवन-मूल्यों, धर्म-आचार, राजनीति और समाज की संरचना का भी व्यापक चित्रण है।

महाकाव्यों के पश्चात् स्मृति साहित्य का विकास हुआ। इसमें मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति, विष्णु आदि स्मृतियाँ आती हैं। साथ ही पुराण साहित्य भी अत्यंत

महत्वपूर्ण है। पुराणों की संख्या 18 मानी जाती है। इनमें ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, शिव, भागवत, ब्रह्माण्ड, अग्नि आदि प्रमुख हैं। अलबरूनी ने भी 18 पुराणों का उल्लेख किया है। कुमारभट्ट ने इन्हें नियम और विधान के शोधग्रंथ के रूप में स्वीकार किया है।

भारतीय साहित्य की परंपरा में बौद्ध साहित्य एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके अंतर्गत तीन पिटक विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं–

( 1 ) **विनय पिटक** – इसमें संघ के अनुशासन, नियम और आचार की संहिता है।

( 2 ) **सूत्त पिटक** – इसमें बुद्ध के उपदेश, प्रवचन और संवाद संगृहीत हैं।

( 3 ) **अभिधम्म पिटक** – इसमें बौद्ध दर्शन की गहन दार्शनिक विवेचना है।

इन पिटकों के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में अनेक अन्य ग्रंथ भी मिलते हैं, जैसे– मिलिन्द पन्हो, दीपवंश, महावंश, ललित विस्तार, अश्वघोष का बुद्धचरित, सूत्रालंकार, अभिधम्मकोष और माध्यमिक सूत्र। इन ग्रंथों में बौद्ध धर्म के सिद्धांत, ऐतिहासिक घटनाएँ तथा दर्शन की व्याख्या विद्यमान है।

इसी प्रकार जैन साहित्य भी अत्यंत समृद्ध है। जैन आगमों के अतिरिक्त अनेक ग्रंथों में धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक विचारों का विपुल भंडार मिलता है।

प्राचीन भारत में संस्कृत साहित्य ने अद्वितीय कीर्तियाँ प्रस्तुत कीं। कालिदास के काव्य और नाटक, 'बाणभट्ट' की गद्य रचनाएँ, माघ की काव्य सृष्टि, विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस', चाणक्य का 'अर्थशास्त्र' और कल्हण की 'राजतरंगिणी' साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। ये सभी रचनाएँ अपनी लालित्यपूर्ण शैली और सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति के कारण आज भी महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं।

भारतीय संस्कृति का साहित्य केवल संस्कृत तक सीमित नहीं रहा। बंगला और दक्षिणी भाषाओं में भी विविध विषयों पर विशाल साहित्य उपलब्ध है। इन भाषाओं में रचित साहित्य ने भारतीय संस्कृति की धरोहर को और भी समृद्ध किया।

मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के अंतर्गत साहित्य का एक विशाल प्रवाह देखने को मिलता है। इसमें सूरदास, कबीर, रसखान, रहीम, जायसी, मीराबाई, रैदास आदि कवियों की रचनाएँ विशेष स्थान रखती हैं। इनके काव्य में भक्ति, प्रेम, भक्ति–साधना और सामाजिक समरसता का अद्वितीय चित्रण मिलता है।

भारतीय साहित्य का मूल स्वभाव यही है कि यहाँ जीवन की विविध समस्याओं और विचारधाराओं पर निरंतर चिंतन हुआ। मेक्समूलर के अनुसार– "मानव, विशेषकर आर्य मानवता के सम्यक् अध्ययन के लिए विश्व में वेद के समान महत्त्वपूर्ण अन्य कोई साहित्य नहीं है।"

भारतीय साहित्य ने न केवल भारतीय संस्कृति को गहराई से आप्लावित किया

है, बल्कि मानव–मन में उठने वाले सार्वकालिक प्रश्नों का समाधान भी प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि अमेरिकी विचारक वाल्ट व्हिटमैन ने कहा– ''ये विचार केवल मेरे नहीं हैं, जितने मेरे हैं उतने ही आपके हैं। यदि आपके नहीं हैं तो ये व्यर्थ हैं।''

विशेषतः उपनिषद इस साहित्य की सर्वोच्च उपलब्धि हैं। इनमें जीवन और आत्मा से जुड़े गूढ़ प्रश्नों का विवेचन मिलता है। अरविन्द के अनुसार उपनिषद भारतीय मन की प्रमोच्य कृतियाँ हैं और वे भारत की असाधारण आत्मा की चरम अभिव्यक्ति हैं।

भारतीय साहित्य की सबसे महान धरोहरों में उपनिषद अग्रणी माने जाते हैं। इनमें जीवन की समस्याओं को केवल बौद्धिक तर्कों से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। उपनिषदों का मूल उद्देश्य मानव जीवन को ऊँचाई तक उठाना और उसे सत्य, ज्ञान तथा आत्मबोध की दिशा में प्रवृत्त करना है।

जर्मनी के महान दार्शनिक शोपेनहावर ने उपनिषदों के संबंध में लिखा है कि– ''सारे संसार में उपनिषदों के समान कोई ऐसा ग्रंथ नहीं जिसमें मानव जाति को ऊँचा उठाने की क्षमता हो।'' इसी प्रकार पाल डोसन ने उपनिषदों को न केवल भारत का, बल्कि संपूर्ण विश्व का अद्वितीय दार्शनिक मंथन कहा है।

जर्मन चिंतक फ्रेडरिक श्लेगेल ने उपनिषदों की तुलना करते हुए लिखा– ''उपनिषदों के आगे पाश्चात्य दर्शन ऐसा है मानो प्रचण्ड सूर्य के सामने एक टिमटिमाता दीपक।'' उपनिषद केवल दार्शनिक ग्रंथ ही नहीं हैं, बल्कि उन्होंने जीवन–प्रणाली और समाज को एक आध्यात्मिक ढाँचे के अंतर्गत नैतिक व बौद्धिक आधार प्रदान किया।

श्री अरविन्द ने स्पष्ट कहा है कि पाइथागोरस और प्लेटो की दार्शनिक धारा में उपनिषदों के विचारों की प्रतिछाया मिलती है। नवप्लेटोनिज्म, ग्नॉस्टिक विचारधारा तथा पश्चिमी दर्शन पर उपनिषदों का गहरा प्रभाव है। यहाँ तक कि सूफी मत भी उपनिषदों की ही आध्यात्मिक चेतना का एक अन्य भाषा में रूपांतरण है।

जर्मन दर्शन का अधिकांश भाग उन सत्यों का बौद्धिक विकास मात्र है जिन्हें उपनिषदों ने अत्यंत गहन आध्यात्मिक रूप में प्रस्तुत किया था। यही कारण है कि आधुनिक चिंतनधारा भी इन्हें नई गंभीरता और तीव्रता के साथ आत्मसात कर रही है। इसने पश्चिम में दार्शनिक और धार्मिक दोनों प्रकार के चिंतन में एक नयी क्रांति की आशा जगाई।

साहित्य किस प्रकार सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करता है, इसका उल्लेख संस्कृत कवि राजशेखर ने किया है–

करोति काव्यम् प्रायेण संस्कृतात्मा यथा तथा।
पठितुं वेति स परं यस्य सिद्धा सरस्वती॥

अर्थात् कोई भी सुसंस्कृत व्यक्ति जैसे–तैसे काव्य रच सकता है, परंतु उसका

सही अध्ययन और रसास्वादन वही कर सकता है जिसे विद्या की देवी सरस्वती की सिद्धि प्राप्त हो।

स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य ने, विशेषकर उपनिषदों ने, जीवन के मूल सत्यों को उद्घाटित किया। उन्होंने न केवल भारत, बल्कि संपूर्ण मानवता के लिए आध्यात्मिक और दार्शनिक दिशा निर्धारित की। यही कारण है कि विश्व के महान दार्शनिक और चिंतक आज भी उपनिषदों को मानव सभ्यता की सर्वोच्च उपलब्धि मानते हैं।

भारतीय साहित्य का मूल उद्देश्य पुरुषार्थ की प्राप्ति है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें से मोक्ष ही अंतिम लक्ष्य है, और साहित्य का चरम ध्येय इसी सिद्धि में निहित है। उपनिषदों ने जीवन और आत्मा के गूढ़ प्रश्नों को आध्यात्मिक दृष्टि से प्रस्तुत किया। शोपेनहावर और श्लेगेल जैसे पश्चिमी दार्शनिकों ने उपनिषदों की तुलना विश्व में सर्वोच्च ग्रंथों से की।

साहित्य ने सामाजिक और नैतिक संरचना को भी स्पष्ट किया। शतपथ ब्राह्मण और कौटिल्य के ग्रंथों के अनुसार समाज वर्ण, धर्म और लोक-आर्य मर्यादाओं के आधार पर व्यवस्थित है। महाकाव्य जैसे महाभारत और रामायण जीवन, नैतिकता, सौंदर्य और सामाजिक आदर्शों का कलात्मक चित्रण करते हैं। श्री अरविन्द के अनुसार, ये महाकाव्य यूनानी और लेटिन महाकाव्यों से अधिक गहन, ओजस्वी और जीवन्त हैं।

इसके अतिरिक्त बौद्ध, जैन और क्षेत्रीय साहित्य ने भारतीय दर्शन, धर्म और जीवन के विविध पहलुओं को समृद्ध किया। भारतीय साहित्य की विशेषता यह है कि यह आध्यात्मिक, बौद्धिक और व्यावहारिक सभी दृष्टियों को संतुलित रूप में प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि भारतीय साहित्य और संस्कृति विश्व में अद्वितीय और महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

भारतीय संस्कृति और साहित्य में बौद्ध त्रिपिटक का विशेष स्थान है। इन ग्रंथों ने केवल भारतीय ही नहीं, बल्कि सुदूर पूर्व तक के समाजों को प्रभावित किया। त्रिपिटक में बुद्ध के जीवन, भिक्षु-संस्थान, और धार्मिक, सामाजिक, कानूनी एवं राजनीतिक परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण मिलता है। धम्म पद में भारतीय संस्कृति के आधार—धर्म का जीवन—उपस्थापित किया गया है, जिसमें बुद्ध के 423 नैतिक उपदेशों को पद्य रूप में संकलित किया गया। इसके अतिरिक्त, जातक कथाएँ समाज और सभ्यताओं के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं और भारतीय संस्कृति के लिए अत्यंत मूल्यवान हैं।

भारतीय साहित्य के रत्न कोष में कालिदास का स्थान शिखर है। उनके काव्य आध्यात्मिक रहस्य और नैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक आदर्शों से परिपूर्ण हैं। उनकी कविता शान्तिदायिनी उपदेश की वह रोशनी है, जो जिज्ञासु मन को स्थायी आनन्द और

गहन बौद्धिक अनुभूति प्रदान करती है। श्री अरविन्द के अनुसार, कालिदास ने अपने प्रगाढ़ बौद्धिक अनुराग और ज्ञान–संस्कृति के माध्यम से अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। उनके महाकाव्य 'रघुवंश' में धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक आदशोज़् का उत्कृष्ट चित्रण मिलता है।

कालिदास की रचनाओं में सामाजिक और सांस्कृतिक दशा का स्पष्ट विवरण मिलता है, जो गुप्त युग के वैभव और उत्कर्ष का परिचायक है। इसी काल के नाटक, काव्य और वर्णात्मक गद्य, जैसे बाणभट्ट का 'हर्षचरित्र' और जूनराज का 'कश्मीर इतिहास', धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से समृद्ध हैं। पंचतंत्र और हितोपदेश जैसी कथाएँ व्यवहारिक नीति, ज्ञान और राज्य कौशल के उपदेश देती हैं। इन कथाओं में पशु–पक्षियों के किस्सों के माध्यम से व्यवहार और नैतिकता का सरल और प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

श्री अरविन्द के अनुसार, इन साहित्यिक कृतियों के अवशेष भी पर्याप्त हैं कि वे उच्च संस्कृति, वैभवशाली बौद्धिकता, धार्मिक सौन्दर्य, नैतिकता, आर्थिक और राजनीतिक जीवन का समग्र प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करते हैं। ये साहित्य न केवल समाज के बहुमुखी विकास को दर्शाते हैं, बल्कि जीवन की सघन हलचल और बहुरंगी सांस्कृतिक छटा को भी उजागर करते हैं।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, भारतीय ज्ञान और साहित्य का भण्डार अत्यंत विशाल, गहन और बहुआयामी है। उनका कथन है कि यह ज्ञान समुद्र की गहराई से भी गहरा, भारत के भौगोलिक विस्तार से भी व्यापक, हिमालय की चोटियों से भी ऊँचा और ब्रह्म की परिक्ल्पना से भी अधिक सूक्ष्म है। भारतीय साहित्य केवल काव्य, उपनिषद या महाकाव्य तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें दर्शन, धर्म, नैतिकता, राजनीति और समाज के सभी आयाम समाहित हैं। यह ज्ञान मानव जीवन के आध्यात्मिक, बौद्धिक और व्यवहारिक पहलुओं का समग्र प्रतिनिधित्व करता है।

पश्चिमी विद्वान विन्टन हिट्स भी इस दृष्टिकोण को मानते हैं और कहते हैं कि जो व्यक्ति वैदिक साहित्य को समझने में असमर्थ है, वह भारतीय संस्कृति की गहनता को नहीं जान सकता। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि यदि हम प्राचीन भारोपीय संस्कृति और उसके प्रारंभिक साहित्य की समझ चाहते हैं, तो हमें भारत के प्राचीन साहित्य की ओर लौटना होगा, क्योंकि यह मानवता के प्राचीनतम और संरक्षित साहित्य का स्रोत है। विन्टन हिट्स ने भारतीय साहित्य की विशालता, बहुमुखी प्रवाह और पश्चिम पर इसके प्रभाव पर भी प्रकाश डाला।

एच.एच. गोविन्द ने भारतीय साहित्य की विशिष्टता और सार्वभौमिक मूल्य पर जोर देते हुए कहा कि इसमें समय की दूरी इसे कम नहीं कर सकती। इसकी

अजस्रता, विविधता और पवित्रता किसी अन्य साहित्य या शास्त्र—यहां तक कि बाइबिल—से तुलना नहीं की जा सकती। भारतीय साहित्य अपने व्यापक दृष्टिकोण, गहन दार्शनिक विचार और नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक आदर्शों के कारण वैश्विक दृष्टि से भी अद्वितीय है।

भारतीय साहित्य के विविध रूपों का संवर्धन अत्यंत व्यापक और अद्वितीय है। जीवन के हर पहलू—धार्मिक, सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक को साहित्य में अभिव्यक्त किया गया है। वैदिक साहित्य की प्राचीनता, व्यापक संरचना और भारत के धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन पर इसका प्रभाव इसे संस्कृति दर्शन में विशेष स्थान देता है।

वाल्मीकि की रामायण भारतीय संस्कृति का प्रेरक स्त्रोत है। इसमें काव्यशैली, नैतिकता और चारित्रिक आदर्श उत्कृष्ट रूप से व्यक्त किए गए हैं। राम के चरित्र में भारतीय संस्कृति के आदर्श मूल्य सुरक्षित और सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत हैं। रामायण न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि भारतीय जनमानस में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना में आज भी प्रेरक शक्ति बनकर उपस्थित है।

भारतीय साहित्य में संस्कृति दर्शन की भागीरथी सदैव प्रवाहित रही है। इसके विभिन्न प्रवाह समाज को समय-समय पर मार्गदर्शन और प्रेरणा देते रहे हैं। कविता, महाकाव्य और धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से भारतीय समाज ने नैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित किया और उनका प्रसार किया। इस दृष्टि से भारतीय साहित्य न केवल कला का माध्यम है, बल्कि संपूर्ण संस्कृति और जीवन दर्शन का दर्पण भी है।

साहित्य और संस्कृति का गहरा सम्बन्ध है। पाश्चात्य विचारक बोबे के अनुसार, कला और साहित्य का विकास किसी समाज की संस्कृति पर निर्भर करता है। उन्होंने विक्टर हीगो के सिद्धांत को आगे बढ़ाया, जिसमें बताया गया कि प्रत्येक जाति तीन काव्यात्मक अवस्थाओं से गुजरती है:

( 1 ) **गीति काव्य** :- आदिम युग का काव्य, जो मानव उपासना और जीवन के गीत का प्रतिनिधित्व करता है।

( 2 ) **महाकाव्य** :- इतिहास और संस्कृति की भव्यता को प्रस्तुत करता है, जैसे भारतीय साहित्य में रामायण और महाभारत।

( 3 ) **नाट्य काव्य** :- जीवन और सामाजिक घटनाओं की नाटकीय अभिव्यक्ति, जैसे कालिदास और अन्य नाट्य साहित्य।

बोबे के अनुसार, गीति, महाकाव्य और नाट्य काव्य का क्रम संपूर्ण मानव साहित्य में सार्वभौमिक है। यह क्रम सामाजिक और भौगोलिक परिवर्तनों के बावजूद लगभग समान रूप से दोहराया जाता है। पाश्चात्य और भारतीय साहित्य दोनों में यह

साहित्य–कालक्रम समानता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है–

पाश्चात्य साहित्य में – बाइबिल (गीति), होमर (महाकाव्य), शेक्सपीयर (नाट्य काव्य)।

भारतीय साहित्य में – वेद (गीति), रामायण–महाभारत (महाकाव्य), कालिदास आदि (नाट्य काव्य)।

साहित्य और संस्कृति का संबंध अविभाज्य है। दोनों एक–दूसरे पर प्रभाव डालकर समाज में सांस्कृतिक आदर्श और नैतिक मूल्य स्थापित करते हैं। संस्कृति के मूल्यों को साहित्य अपनी भाषा और भावाभिव्यक्ति के माध्यम से स्वरूप प्रदान करता है। जब समाज इन साहित्यिक अभिव्यक्तियों को ग्रहण करता है, तो वह अपनी संवेदनाओं, सुख–दुख और जीवन दृष्टि के अनुरूप अपने व्यवहार को ढालता है।

भारत में साहित्य ने भावतरंग, सौन्दर्यबोध और नैतिकता को समाज में स्थापित किया। भारतीय दार्शनिक कृतियाँ केवल विचारों तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि जीवन को आलोकित करती रहीं। धार्मिक अनुभव और आन्तरिक ज्ञानात्मक दृष्टि से साहित्य ने मानव मन को प्रेरणा दी और समाज के नियम, विश्वास और सांस्कृतिक परंपराओं को व्यक्त किया। नीति, काव्य, भक्ति गीत, तुलसीदास की रामायण, रामप्रसाद, तुकाराम, रामदास और दक्षिणी संतों के गीत ये सभी भारतीय संस्कृति का जीवंत रूप हैं और समाज के विभिन्न वर्गों में लोकप्रिय रहे।

भारतीय साहित्य और संस्कृति की यह धारा अविच्छिन्न जीवन शक्ति के रूप में वर्तमान तक प्रवाहित होती रही है। इसका प्रभाव न केवल भारतीय समाज में देखा जा सकता है, बल्कि इसके चिन्ह अन्य देशों की संस्कृतियों और साहित्यों में भी प्रकट होते हैं। भारतीय साहित्य अपनी विशालता और वैविध्यपूर्ण प्रकृति के कारण संस्कृति दर्शन और मानवीय जीवन की गहरी समझ प्रदान करता है।

कला शब्द का निर्माण काव्य और लाश्य के प्रथमाक्षर से हुआ है। काव्य में कवि के अव्यक्त भाव होते हैं, जिन्हें लाश्य (नृत्य और भावों की अभिव्यक्ति) के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। सामान्यत: प्रत्येक रचनात्मक कार्य को कला की परिधि में रखा जा सकता है। जिन कलाओं में लालित्य और सौन्दर्य था, उन्हें ललित कलाएँ कहा गया। ललित कलाएँ रस और भावप्रधान होती हैं और मनुष्य में उद्दात भावनाओं का संचार करती हैं।

भर्तहरि के अनुसार, साहित्य, संगीत और कला के ज्ञान से रहित मनुष्य साक्षात् पशु ही है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा कि मनुष्य बाह्य वस्तुओं से अधिक सहानुभूति और भावों की अभिव्यक्ति है। प्राचीन विचारक रस्किन् के मत में, प्रत्येक महान कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव आह्लाद की अभिव्यक्ति है।

भारतीय संस्कृति दर्शन के अनुसार, कला केवल भोग या मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि आत्मा में परमानन्द की अनुभूति ही इसका सर्वोच्च लक्ष्य है। ललित कलाएँ मुख्यत: पाँच प्रकार की हैं– काव्य कला–अर्थ प्रधान, संगीत कला–ध्वनि प्रधान, वास्तु कला / स्थापत्य कला–रूप प्रधान, मूर्ति कला–रूप प्रधान, चित्रकला–रूप प्रधान।

प्रो. के.डी. वाजपेयी के अनुसार, भारत में ललित कलाओं का उद्देश्य सौन्दर्य, आनंद और शक्ति का संवर्द्धन था, न कि अंधविश्वास या कुत्सित भावों का प्रचार।

भारतीय संस्कृति में ललित कला में निपुणता नागरिक के मुख्य लक्षणों में गिनी जाती थी। वात्सायन कला और अन्य कलाओं में दक्षता को आवश्यक माना जाता था। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार, रस्किन् गोपा कला में अत्यंत निपुण था और उसका विवाह उसी व्यक्ति से किया जाना चाहिए था जो कला में दक्ष हो। आचार्यों ने लिखा है कि कला का अर्थ केवल बाहरी प्रदर्शन नहीं, बल्कि अन्तर्मुखी सृजनात्मक और भावनात्मक अभिव्यक्ति है।

भारतीय संस्कृति में वास्तु कला, मूर्ति कला और चित्रकला ऐसी तीन प्रमुख कलाएँ हैं जो दृष्टि द्वारा आत्मा को आकर्षित करती हैं। इन कलाओं में दृश्य और अदृश्य तत्व दोनों का सामंजस्य महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, भारतीय संस्कृति में 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है, जिनका विवरण श्री बसवराजेन्द्र की रचना शिव तत्व कर्म में मिलता है। इनमें इतिहास, आगम, काव्य, नाटक, गायन, अलंकार, विद्या, गणित, व्यवहार, ज्योतिष, कला–सिद्धि, चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तु कला, कृषि, पशुपालन, युद्ध कौशल आदि शामिल हैं। ये कलाएँ सिर्फ मनोरंजन या कौशल नहीं, बल्कि समाज, जीवन और संस्कृति की व्यापक सृजनात्मकता का परिचायक हैं।

श्रीमद्‌भागवद के टीकाकार श्रीधर स्वामी और शुक्राचार्य ने भारतीय कलाओं का विवेचन करते हुए जीवन में कला के महत्व को रेखांकित किया है। भारतीय दृष्टिकोण में कला केवल सौन्दर्य या मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि सत्य और आध्यात्मिक अनुभूति का माध्यम है। कलाकार अपने इन्द्रिय व बाहरी प्रवृत्तियों को नियंत्रित करके अन्तर्मुखी अनुभूति के माध्यम से सृष्टि के परम तत्व को प्रस्तुत करता है।

भारतीय संस्कृति में कला और जीवन अविभाज्य हैं। जीवन के मूल्य कलाओं के माध्यम से व्यक्त होते हैं। कालिदास के रघुवंश में 'ललित कला' गीति और नृत्य के लिए प्रयुक्त हुई है, जो पाश्चात्य 'फाइन आर्ट' का समानार्थक है। हीगल और डॉ. श्यामसुंदर दास के अनुसार ललित कला मूर्त (वास्तु, मूर्ति, चित्र) और अमूर्त (संगीत, काव्य) रूप में विभक्त होती है।

ललित कलाओं के मुख्य तत्व हैं:

**(1) आधार और साधन** – ईंट, पत्थर, लोहा, कूची, शब्द, भाषा आदि।

**( 2 ) उपकरण** – नेत्र और करण; जैसे वास्तु, मूर्ति, चित्र में नेत्र, संगीत और काव्य में करण।

भारतीय संस्कृति के अनुसार कला पूर्णतया आध्यात्मिकता से सराबोर है और जीवन तथा मनोवृत्तियों का सजीव प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है।

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार साहित्य और कला राष्ट्र चेतना के श्रेष्ठतम प्रतीक हैं। इनमें राष्ट्र की महान शक्तियाँ, सकारात्मक भावनाएँ और जीवन का उत्साह प्रकट होता है। विलियम रोथ के अनुसार भारतीय कला में धार्मिक भावनाएँ और ईश्वर के प्रति गहन चिंतन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।

भारतीय कला की विशेषता यह है कि यह केवल धर्म या मनोरंजन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मूर्ति, चित्रकला, स्थापत्य जैसे सभी रूपों में संस्कृति दर्शन और जीवन मूल्यों का प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। कला का विकास तालबद्ध और समन्वित होता है; प्रत्येक कलाकृति अपने आकार और रूप में भिन्न होते हुए भी अंतिम उद्देश्य—अनुभव और सत्य का प्रकाशन की ओर इंगित करती है।

भारतीय कला में तरलता, प्रतीकात्मकता और परंपरागत भाव प्रमुख हैं। शिल्प और मूर्तिकला अक्सर भक्ति भाव से प्रेरित होती हैं। भारतीय संस्कृति में नारी और देवी का विशेष सम्मान है, जिसे शक्ति, वात्सल्य और करूणा भाव से अभिव्यक्त किया गया है। इसे शालभंजिका, याक्षणा, उमा, लक्ष्मी, प्रज्ञेय पारमिता आदि के माध्यम से देखा जा सकता है।

विष्णु, ब्रह्मा और लक्ष्मी की मूर्तियों में दार्शनिक और सांकेतिक कथाओं का चित्रण मिलता है। शेष की शैय्या पर सोते हुए विष्णु, लक्ष्मी और ब्रह्मा के कमल और हंस के प्रतीक, सृष्टि, ज्ञान और सात्विक गुण का प्रतिनिधित्व करते हैं। हंस ईश्वरीय गुणों का प्रतीक है और कमल ब्रह्मा की उत्पत्ति और लक्ष्मी एवं सरस्वती की दिव्यता का प्रतिनिधित्व करता है।

श्री वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, भारतीय कलाकारों ने पात्र और पुष्पों के चित्रण में अद्वितीय सफलता प्राप्त की है, जो विश्व की अन्य कला शैलियों में नहीं मिलती। रूप शास्त्र में पशु और वनस्पति जगत का विस्तृत और सुंदर चित्रण उल्लेखनीय है।

भारतीय कला सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन से ओतप्रोत है और इसमें आध्यात्मिक तत्व स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं। चाहे किसी पवित्र वास्तु कृति का निर्माण किसी तिथि या शैली का हो, वह अनादि, प्राचीन और भविष्यसूचक रूप से भारतीय संस्कृति और कला दर्शन को प्रतिबिंबित करती है।

श्री अरविन्द के अनुसार, भारतीय कला सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना

से जुड़ी हुई है, जबकि पाश्चात्य कला अधिक भौतिक और लक्ष्योन्मुख है। हॉवेल ने इसे आदर्शवादी, रहस्यात्मक, प्रतीकात्मक और प्रगतिशील कला के रूप में वर्णित किया है।

भारतीय संस्कृति में संगीत का अत्यधिक महत्व है। सामवेद को संगीत का वेद माना जाता है और शब्द वाक् से विश्व की उत्पत्ति मानी गई। पाणिनी ने भी संगीत और मंत्र के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। प्राचीन काल में संगीत की शिक्षा सामान्य नागरिकों के लिए अनिवार्य मानी जाती थी और इसे समाज में सौंदर्य और कला की भावना विकसित करने का साधन माना गया।

भारतीय कला सृजनात्मक, प्राचीन और विविध है। यक्षी, बुद्ध और नटराज की मूर्तियाँ इस विविधता का प्रमाण हैं। कला में सौन्दर्यानुभूति केवल बाह्य रूप तक सीमित नहीं रहती, बल्कि प्राणमय कोष और दिव्य अनुभव तक पहुँचती है। इस प्रकार भारतीय कलाकार ने प्राकृतिक सुषमा और दिव्यता को अपनी कलाकृतियों में समाहित किया है, जो मानव में एकत्व और आध्यात्मिक अनुभूति जागृत करती हैं।

प्रत्येक देश की कला उसके सामाजिक और आर्थिक इतिहास से प्रभावित होती है। भारतीय संस्कृति में कला को उपविद्या माना गया है, जिसमें सर्वगत्व, पूर्णत्व और व्यापकत्व शामिल हैं। चित्र और मूर्तियों में प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से भाव और अनुभव को व्यक्त किया गया। भारतीय कला की प्रेरणा धर्म से जुड़ी रही, लेकिन कभी धर्म की सीमाओं में बंधी नहीं।

प्राचीन विद्वानों ने कहा कि भारतीय कला का उद्देश्य केवल भौतिक सौन्दर्य नहीं, बल्कि आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति और दिव्य सौंदर्य की अनुभूति है। यह दृष्टि यूनानी कला से भिन्न है, क्योंकि जहां यूनानी कला तर्क और नैतिकता पर आधारित थी, वहीं भारतीय कला आध्यात्म और भावना पर केंद्रित रही।

संस्कृति के विभिन्न युगों में कला की रचना चार प्रकारों में विभाजित की जा सकती है:

( 1 ) **शरीरी कला** :- पार्थिव और यथार्थवादी विषयों पर आधारित; इसका उद्देश्य ऐन्द्रिक सुख और आनंद प्रदान करना है।

( 2 ) **प्रत्यय कला** :- इन्द्रियों से ऊपर, आदर्श और प्रतीकात्मक; मानव बुद्धि और चेतना को परमात्मा या ब्रह्म से जोड़ना इसका लक्ष्य है।

( 3 ) **आदर्शवादी कला** :- अंशत: भौतिक और अंशत: पराऐन्द्रिक विषयों का चित्रण; मानव की अंतरात्मा को अनन्त मूल्य और सौंदर्य की ओर प्रेरित करती है।

( 4 ) **अविन्यास कला** :- किसी विशेष विषय पर केंद्रित नहीं; शैली और प्रेरणा में मुक्त और अनिश्चित; रचना का अवगुण्ठन मात्र होती है।

सारत: कहा जा सकता है कि महान संस्कृतियों में कला का विकास समाज

और संस्कृति के मूल आदर्शों, सिद्धांतों और मानव व्यक्तित्व के आधार पर होता है।

भारतीय कला में आध्यात्मिकता और ऐतिहासिकता का अद्वितीय समन्वय है, जो सीधे भारतीय संस्कृति के मनोभावों का प्रतिनिधित्व करती है। यह केवल बाह्य सौंदर्य की प्रस्तुति नहीं है, बल्कि आंतरिक सौंदर्य, आत्मिक शांति, ओज और आध्यात्मिक आनंद की अभिव्यक्ति है। श्री आर.सी. मजूमदार के अनुसार, ताल, गति और सौंदर्य की उच्च भावना से परिपूर्ण भारतीय कला ने अपने निर्माण और शिल्प में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। गुप्तकालीन कला में बौद्धिकता और विवेक प्रधान होने के कारण अत्यधिक अलंकरण को नियंत्रित रख पाना संभव हुआ और इस प्रकार कला में उच्च विकसित भावना प्रकट हुई।

अजन्ता की चित्रकला भारतीय चित्रकला का चर्मोत्कर्ष है। अजन्ता की भित्ति चित्रों की सुन्दरता अलौकिक है और ये चित्र न केवल तकनीकी दृष्टि से उत्कृष्ट हैं, बल्कि इनमें भक्ति, सौंदर्य और आध्यात्मिक गहनता भी स्पष्ट रूप से झलकती है। खजुराहो के मन्दिर भारतीय वास्तुशास्त्र और संस्कृति का परिचायक हैं। नागर शैली में बने ये मन्दिर न केवल भव्य विन्यास और उत्कृष्ट शिल्प संयोजन के लिए प्रसिद्ध हैं, बल्कि इनमें प्रकृति और मानव जीवन की सौन्दर्य राशि का शाश्वत और ललित कला तत्वों के माध्यम से समन्वय देखा जा सकता है। इन मन्दिरों में चारुत्व और श्रृंगारिकता का अद्वितीय संयोजन दृष्टिगोचर होता है।

प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में ऐलिफेण्टा और केलाश जैसी कृतियाँ अंतिम महान कृतियों के रूप में विद्यमान हैं। ऐलिफेण्टा की त्रिमूर्ति में जड़ पदार्थ को सजीव रूप देने की कला का सर्वोच्च उदाहरण देखने को मिलता है, जिसमें अनुपात की भव्यता के साथ भावनाओं की कोमलता भी विद्यमान है। मूर्तिकार केवल शिल्पकार नहीं रहकर एक भक्त और दार्शनिक का रूप धारण करता है। इसी प्रकार, अशोक स्तम्भों की शिखर गुप्तकालीन बुद्ध की मूर्तियाँ, अजन्ता, एलोरा, कांजीवरम और नटराज की कांसे की मूर्तियाँ प्राचीन भारत में कला के विकास की विभिन्न अवस्थाओं की द्योतक हैं। इन कृतियों में पत्थर, ईंट, कांसा और रंग का प्रयोग होते हुए भी उद्देश्य आत्मा के वास्तविक स्वरूप का रहस्योद्घाटन करना है।

श्री अरविन्द के विचार इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारतीय कला ने व्यापक सौंदर्य भावना और आध्यात्मिक आवश्यकता को सर्वोपरि स्थान दिया। भारतीय कला में आध्यात्मिक प्रवृत्ति अन्य सभी तत्वों की प्रगति का साधन बनी और इसे मानव के बहुमुखी विकास की शक्तिशाली साधना माना गया। यह सिद्ध करता है कि भारतीय कला न केवल सौंदर्य और कौशल का प्रदर्शन है, बल्कि मनुष्य की आंतरिक चेतना, भक्ति, विचारशीलता और संस्कृति की परिपक्वता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

निष्कर्षतः भारतीय साहित्य और कला जीवन, समाज और संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। साहित्य समाज के नैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आदर्शों का वाहक है, जबकि कला सौन्दर्य, आध्यात्मिकता और प्रतीकात्मकता के माध्यम से मानव मन को परिष्कृत करती है। भारतीय कला केवल भौतिक आनंद के लिए नहीं, बल्कि आन्तरिक अनुभव, ओज और दिव्य अनुभूति के लिए रची गई है। वेद, रामायण, महाभारत, अजन्ता, खजुराहो और ऐलिफेण्टा जैसी कृतियाँ समाज के बहुआयामी विकास, राष्ट्रीय चेतना और मानव जीवन के उच्च आदर्शों की अभिव्यक्ति हैं। इस प्रकार, साहित्य और कला भारतीय संस्कृति के सर्वोच्च मूल्य और मानव चेतना के प्रगतिशील साधक हैं।

❑❑❑